IJAER/ November-December 2024/Volume-13/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

'गीतांजलि श्री'के उपन्यासों में वर्तमान परिवेश पर व्यंग्यात्मक शैली

शोधार्थी सुरेश कुमार

निर्देशिकाः- डॉ कविता चौधरी

सामाजिक एवं मानविकी संकाय, हिन्दी विभाग, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय हिसार हरियाणा।

समाज में प्रत्येक दिन अनेक विकृतियों के बारे में पत्रकारिता के विविध माध्यमों से पता चलता है। सोशल मीडिया जहां समाज की विकृतियों को उजागर करने में तत्परता दर्शाता है, तो वहीं एक साहित्यकार अपनी लेखनी भिन्न-भिन्न शैलियों के माध्यम से गंभीरता के साथ अपने भाव रखता है। समाचार पत्रों का पाठक घटनाओं को अतिशीघ्र भूल जाता है लेकिन साहित्यिक पाठक के मानस पटल पर लंबे समय तक इसे देखा जा सकता है। हाल ही में भारत के मैनपुरी में जन्मी विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त 2022 में बुकर पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार 'गीतांजलि श्री' ने अपने उपन्यासों में वर्तमान परिवेश पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रकाश डाला है। व्यंग्यात्मक शैली व्यंग्य शब्द 'अ´ज' धातु में वि उपसर्ग तथा 'ण्यत्' लगाने से बना है, जिसके विभिन्न अर्थ हैं- विविक्षा के द्वारा निर्देष, गूढ़ अथवा अप्रत्यक्ष इंगित के द्वारा निर्देष, संकेतित अर्थ शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना द्वारा निर्दिष्ट अर्थ । व्यंग्य को अंग्रेजी भाषा में Satire कहा जाता है। इसे विभिन्न विचारकों ने परिभाषित किया है परन्तु विचारों में मतैक्य नहीं है। डॉ. प्रेमनारायण के अनुसार- ''जिस हृदय में सहानुभूति विरोधी भावों की छाया पड़े उसे उपहास कहते हैं।

जार्ज मेरेडिथ ने व्यंग्य को परिभाषित करते हुए लिखा है-''यदि उपहास्य गोचर हो जाए तथा उसके प्रति सहानुभूति कुंठित हो जाए तो समझना चाहिए कि पकड़ में आ रहे हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ''व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी हास्यास्पद बना लेना हो जाता है।''

एन्साइक्लोपीडिया अमेरिका में व्यंग्य के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए उसे अधिकांशतः हास्य से पूर्ण कहा गया है। ''व्यंग्य का लक्ष्य दुष्टता एवं मूर्खता को रोकना है तथा उनको हास्यास्पद साधन में परिवर्तित करने का संकेत है ।

हरिशंकर परसाई का कथन है-''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों-मध्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि व्यंग्य का मुख्य धर्म व्यक्ति या समाज की विषिष्ट दुर्बलताओं पर प्रहार करना है एवं इस के साथ ही उसमें सुधार भाव की अपेक्षा भी की जाती है। व्यंग्य की उत्पत्ति अन्तर्विरोधों के निराकरण के लिए भाषा की तीखी, पैनी व चतुर कारीगरी आवश्यक है जो कि व्यंग्य के माध्यम से उद्भूत होती है ।

'गीतांजलि श्री' ने समाज में सामान्य मुद्दों पर ही प्रहार किया है। उन्होंने वर्तमान परिवेश के बदलते हालात पर लेखनी चलाकर अपनी अभिव्यक्ति को सार्थक किया है। व्यंग्य की आत्मा सदैव जीवन की निकटता का अनुभव कराती है तथा व्यंग्य विशेष प्रकार की निर्ममता से युक्त होता हैं। व्यंग्यकार ने अपने साहित्य के माध्यम से आम-जन जीवन, सोशल मीडिया, नारी, धार्मिक पाखण्डों, राजनीतिक मुद्दे, विविध परम्पराएं, एवं पाश्चात्य संस्कृति आदि पर समकालीन परिस्थितियों से अवगत होकर व्यंग्य का प्रयोग किया है। समाज में व्यक्ति एक अहम् भूमिका निभाता है। वह समाज की एक महत्वपूर्ण ईकाई है। आज के इस अर्थतंत्र में रिश्तों का ताप ठण्डा हो गया है, इसलिए संबंधों को वस्तुओं के तराजू में तोला जाने लगा है। हंसते-खेलते परिवार अतिशय भौतिकता की वेदी पर बलि चढ़ते जा रहे हैं। कुछ ऐसे ही दृश्य प्रत्येक दाम्पत्य जीवन में भी देखने को मिलते है। पति-पत्नी की बढ़ती हुई आकांक्षाएं एवं भौतिक भूख न केवल दाम्पत्य जीवन को तनावपूर्ण और

दुःखदायी बना देती है, अपितु पूरे परिवार को बिखेर कर रख देती है। जो परिवार पहले प्यार और अपनेपन की सम्पन्नता से सराबोर होता है, वह अब भौतिक चाह के तले व्यर्थ लगने लगता है। अद्यतन समाज अपनी सफलता एवं संपूर्णता भौतिक वस्तुओं के उपभोग में दृष्टिगोचर करने लगा है यानि वह हर उस चीज का सहवास करना चाहता है, जिससे वह वंचित है। व्यक्ति की यह असीमित एवं नई-नई इच्छाएँ ना केवल व्यक्ति से उसका सुख-चैन छीनती हैं बल्कि उसे गहरे अवसाद एवं हीनता भाव से भर देती हैं, जिसके कारण उसे अपना जीवन व्यर्थ एवं बेबुनियाद लगने लगता है। सब कुछ पा लेने की चाह उसे ऐसे 'अधूरेपन' में धकेल देती है जो जीवन पर्यन्त उसका पीछा नहीं छोड़ती। जैसे उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में व्यंग्यात्मक रूप में लिखा है-

'' दूसरे, उन्हें औरतें ना पंसन्द थी। औरतों का घर के सामने की तरफ दिख जाना उन्हें खलता। मुझे याद है कि फाटक से घर तक बजरी की सड़क के किनारे, फ़ालसों की झाड़ें थीं। हम उसके बैंगनी दानों को, कभी कच्चे, हरे, खट्टे, दानों को चुगते रहते। फाटक खुलने की आवाज़ हुई, मेहमान का जायजा लेने के पहले ही दादा फ़ौरन बोले, "सुनैना अन्दर जाओ, कुछ चाय-नाश्ता भेजने को कहो। "मैंने अपने में औरत उस पल देख ली। को कभी देखा भी है या नहीं ? दादी, माई, हरदेई कोई उनके सामने न जाती। हमें तो लगता दादा ने औरत को कभी देखा भी है या नहीं ?

'गीतांजलि श्री' ने नारी की वेश्या वृत्ति की समस्या पर करारा व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। आज समाज के कुछ ठेकेदार अपनी जाति दुःश्मनी मिटाने के लिए नारी को ऐसे कार्य में धकेल देते है; जिससे वह चाहकर भी बाहर नही निकल सकती। कई बार समाज में ऐसे उदाहरण भी देखने को मिल जाते है; जहाँ खुद बाप, माँ, सास, ससुर या परिवार का अन्य सदस्य अपनी बेटी, बहु, या बहन को ऐसे वेश्या वृत्ति जैसे घिनौने कार्य करने के लिए बाध्य करते है। 'तिरोहित' उपन्यास में ऐसी ही समस्याओं को 'गीतांजलि श्री' ने अपनी लेखनी में जगह दी है। जैसे-

"भागकर कहाँ आई," प्रेमिका बोली। "मैंने तो सुना है उसका ससुर उसे यहाँ लाया। खूब रोती-बिसूरती थी और ससुर के पाँव पकड़-पकड़ के कहती, ऐसा न करो बप्पा, छोड़ के मत ही जाइयो बप्पा, मर जाएगी तेरी बहुरिया बप्पा । कि रोने में उसकी नाक बहने लगी तो ससुर की ही धोती से वहीं उनके पैरों के पास वह नाक सुड़कती गई । हट-हट, ससुर अपने पाँव उसके हाथ से नहीं, अपनी धोती उसकी नाक से बचा रहे थे।

लेखिका ने परंपरा एवं रीति-रिवाज़ों के आड़ में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार, शोषण आदि का चित्रण सहजता के साथ किया है। 'गीतांजलि श्री' ने समाज के व्याभिचारी समस्या के सन्दर्भ में भी अपने विचार व्यक्त किए है। 'माई' उपन्यास में उन्होंने बाबू का जिक्र किया है, जो माई का पति है। वह विवाहेतर संबंध रखता है, फिर भी माई बाबू से लड़ती नहीं है। वह अन्याय के खिलाफ ज़रा सी आवाज़ भी नहीं उठाती। वह अपनी सास के आगे सदैव सिर झुका कर रहती है। वह माई पर रौब जमाती है। नशे में दादी का पति उसको मारता है। रेत -समाधि में रोजी बुआ के चरित्र-चित्रण के माध्यम से लेखिका ने किन्नर समाज की समस्याओं को भी जनमानस के समक्ष लाने का सफल प्रयास किया है और किन्नर रोजी बुआ के भीतर विद्यमान दयालु हृदय की भावना को उजागर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। रोजी अपनी व्यथा समाज के समक्ष इन शब्दों में रखती है-

"न मेरे लिए फ़िल्म, न साहित्य, न कला, न कपड़े। जो आप उतार दें, उस उतरन में हम उतर लें। अपनी कहीं गिनती नहीं। झील में बाजी डाल आओ तो किसी को पता नहीं चलेगा कि एक कम है।"

समाज के तीसरे लिंग के दर्द को और लोगों की उनके प्रति सोच पर व्यंग्य भाव को रखा है। जैसे किसी पात्र के यह कहने पर कि हिंजड़ों के लिए इस समाज में पासपोर्ट और वीजा की क्या ज़रूरत है ? क्या तीसरे लिंग को समाज ने कभी मान्यता दी है ? उन्होंने अपने हिंजड़े पात्र के मुख के माध्यम से कहलवाया-

"मुझे पासपोर्ट से क्या ? न होने के फ़ायदे हैं। हमारी गिनती न मुस्लीम में, न क्रिस्चन मे, न यहूदी में, न पारसी में, न हिन्दू में, न आदमी-औरत में हमारा नाम नहीं लेना, हमें पहचानना नहीं। हमें असल क्या, तसव्वुर से ही ग़ायब रखना चाहते हैं। तो हम तो कहीं भी घुस लें।

समाज में प्रायः लड़का एवं लड़की के प्रति भेद-भाव जैसे भाव को भी उजागर किया है। लड़का हो तो वह गृह विज्ञान के अलावा कोई भी विषय पढ़ सकता है। मगर लड़कियों के लिए मात्र गृह विज्ञान ही है। यहाँ समाज लड़का और लड़की दोनों की अभिरुचि निर्धारित करते हैं। समाज बच्चों के मन में छोटी उम्र में ही लड़का-लड़की भेदभाव डालते हैं। अगर नारी शिक्षित होना चाहती है, तो विविध भाषाओं का ज्ञान तो अर्जित कर लें लेकिन बोलने की कोशिश न करे। हमारे पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अलग-अलग नियम बनाए है। एक लड़की को कैसे हंसना है, बैठना है, बर्ताव करना है आदि हमारे समाज ने तय करके रखा है। स्त्री के कंधों पर नैतिकता की ज़िम्मेदारी क्यों है ? सदियों से यही चलते आ रहे है कि सिर्फ स्त्रियों पर ही नैतिकता लागू है। नारी अनेक कष्ट सहकर त्याग करती रहती है और उसके त्याग का फल दूसरे लोग भोगते है। वह कई तरह के व्रत करती है। अपने पति के लिए, पुत्र के लिए, संतानों के लिए। भारत में स्त्रियाँ अपने पति की मंगलकामना को लेकर व्रत करती है। मगर पुरुष अपनी पत्नी की मंगलकामना के लिए कोई भी व्रत नहीं करते। यह हमारे समाज की सदियों पुरानी व्यवस्था है।

आधुनिक युग में भी स्त्री पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है। वह आज भी आज़ादी के लिए तरसती रहती है। स्त्रियों को अपने ऊपर हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाना चाहिए और अपनी अस्मिता की सही पहचान भी उसे होनी चाहिए। समाज में नारी के बारे में उपन्यासकार ने आखिर लिखा कि वह इस गाथा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराएगी। औरतें समाज का अन्तरंग हिस्सा हैं और इसलिए उनका रिश्ता प्यार का है। औरत चाहे वह किसी भी रंग या जाति की हो, वह इस कसौटी पर खरी उतरी है। एक बेटी माँ के अंतस् का अन्वेषण करती है और उसके भीतर जिजीविषा के भाव पैदा करती है। कहीं माँ के चेहरे पर दाढ़ी के बाल उगने लगते हैं तो कई योनि में शिश्न जैसा सिस्ट। लेखिका उपन्यास में इस प्रसंग पर प्रकाश डालती हुई लिखती है-

"या क्या शिव जी का दहकता लिंगम जिसे पार्वती ने अपने भीतर खींच लिया था कि शीतल जल में डुबो के उसकी जलन बुझा दें? श्शश शान्त शान्ति . . . योनि ने धधकते इरादों पर पानी फेर दिया, स्थिर रहें, निर्वाण, साधना, समाधि, जैसे हर शिव मन्दिर में देख लो। योनि और योगी।

घर-परिवार एवं समाज में हर व्यक्ति के अपने-अपने कर्तव्य व अधिकार हैं जिनका निर्वहन वह करते रहते हैं। यह आवश्यक नहीं कि हर व्यक्ति एक दूसरे के बराबर योग्यता, कार्य कुशलता, दक्षता आदि रखता हो। व्यक्तिगत विभिन्नता का गुण पूरी दुनिया में व्याप्त है। इसलिए मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की विभिन्नताएं पाई जाती हैं। इस कड़ी में पुरुष एवं महिला प्रत्येक का अपना-अपना उत्तरदायित्व है जिसका निर्वहन उनको करना पड़ता है। हमारी भारतीय संस्कृति में पुरुषों की प्रधानता की बात कही गई है। हालांकि प्राचीन काल में भी चंद महिलाएं ही पुरुषों के बराबर या आगे रहीं। आज भी कुछ महिलाएं ही विभिन्न क्षेत्रों में अपना योगदान दे रही हैं। सैनिक के रूप में भी महिलाओं ने काम करना शुरू कर दिया है लेकिन वहां भी दुरुह स्थानों या सीमावर्ती इलाकों में पुरुष सैनिकों को ही ज्यादातर उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। ऐसा मानकर चला जाता है कि पुरुष विकट परिस्थितियों में भी अपने को समायोजित कर लेते हैं। जैसे निम्न पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट होता है।

"ताक़त उनकी बढ़ रही है, जिन पर परिवार नियोजन की जबरदस्ती नहीं है, जो कीड़े-मकोड़ों की तरह बच्चे पैदा करते हैं, जो शादी-ब्याह के अपने कानून बनाते हैं और तीन बार तलाक़ कहकर जीवन भर बीवियाँ बदलते हैं और एक साथ चार रखते हैं और पराई औरतों का शील भंग करते हैं तो उनके बड़े-बूढ़े आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हें शबाब नसीब होगा और गाय नित ही काटते हैं...

वर्तमान में देखा जाता है कि ग्राम प्रतिनिधि के रूप में लगभग 33 प्रतिशत महिलाएं ग्राम प्रधान के रूप में चयनित तो हो जाती हैं लेकिन उनका कामकाज प्रायः उनके पति (पुरुष) ही प्रधानपति के रूप में निभाते हैं। पहले महिलाएं बच्चों की देखभाल के साथ ही परिवार में अपने को समायोजित करने का भरपूर प्रयास करती थीं। आज के बदलते परिवेश एवं अधिकांश महिलाओं के कामकाजी हो जाने से पुरुष को पति एवं पिता के रूप में कहीं अधिक जिम्मेदारियां उठानी पड़ रही हैं। संयुक्त परिवार में समायोजन बनाने में पुरुष की सहभागिता बढ़ती जा रही है। पति के रूप में पुरुष की भागीदारी स्त्री के लगभग बराबर होती है लेकिन पिता के रूप में परिवार एवं समाज में उनकी सहभागिता कई गुना बढ़ जाती है। अपनी संस्कृति के प्रति मर्यादित भाव को दर्शाते हुए लेखिका कहती है जैसे-

'' बरसों से दुल्हन बनी घर में घूंघट काढ़े घुसी बैठी है। उसका नाम है। सेक्यूलरिज्म!

फिर हँसी गूंजी। बेचारी की किस्मत फूटी है। न माँ बन पाई है कि गृहस्थी फले-फूले, न... हनीफ़ बीच में ही दोहरी लगाता है,

''ठीक हेड साहब। हमारी दुल्हन को हम इजाजत नहीं देते कि पूजनीय हिंदुस्तानी स्त्री का दर्जा गिराए। बाहर निकलकर, और शर्मोहया छोड़कर कठमुल्लों से आँख मिलाए, खासकर जब बाहर इतनी जीभ लपलपा रही हैं, जाँघे खुजलाई जा रही हैं कि इसे फाड़ खाएँ! यह तो हमारे घर की मर्यादा है...

समाज में एक ऐसा वर्ग है जो यौन शिक्षा और सेक्स की बात करने में संकोच भाव रखता है। 'श्री' ने उन पर भी कड़ा प्रहार करते हुए लिखा है कि यौन संतुष्टि की खोज में दूसरों की भावनाओं, इच्छाओं, इरादों, उद्देश्यों, हितों या मानदंडों पर पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया जाता है। यौन अवसर केवल राजनीतिज्ञ ही नही उठाते बल्कि समाज के आम साधारण लोग भी इसका फायदा उठाते है। परिवार के कई पुरूष और महिला यौन अवसर का लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते है। जैसे उन्होंने लिखा है-

''शायद छिप-छिप के अभी भी लोग मिलते हैं ? शायद हों अभी भी ऐसी औरतें जो बच्चों को स्कूल-कॉलेज भेजकर, पति को काम पर रवाना करके निकल आती हैं अपने घर से छत पर और उतर जाती हैं किसी और के घर के सुनसान दरवाज़े से पीछे को निकल, रिक्शा लेने ? नाहक । छुप के। लेबरनम हाउस के बड़े फाटक से नहीं, पीछे झाड़ियों को दबाकर, लाँघकर । लाँघना ! एक ऐसी क्रिया जिसमें खुशी की छलछलाहट है। लाँघो तो तन अलग, दिल अलग फड़कता है। लाँघी जाती है दीवार, झाड़ी, छत, दहलीज़, सीमा, चन्द्रमा...। लाँघते ही छूटती है खिलखिल हँसी बुरक़े के अन्दर से, जो दबाए न दबे, डरे जाए पर छिटके।

समाज में ऐसे विषय पर लिखने या बोलने में एक अजीब-सी संकीर्ण विचारधारा देखने को मिलती है। आमतौर पर वैज्ञानिक अर्थ में, यौन अवसरवादिता को अक्सर सीधे तौर पर देखने योग्य यौन संकीर्णता या आकस्मिक सेक्स में संलग्न होने की देखने योग्य प्रवृत्ति के रूप में वर्णित किया जाता है, चाहे मकसद कुछ भी हो।

संसार में प्रत्येक दिन अनेक बच्चों का यौन शोषण होता है और यौन शोषण करने वाले कोई बाहर के व्यक्ति ही नहीं बल्कि जान पहचान के ही व्यक्ति होते हैं, जिनका घर में आना जाना लगभग होता है। 'गीतांजलि श्री' ने अपने उपन्यासों में ऐसी पीड़ा को दर्शाने का प्रयास किया है कि यौन पूर्ति की फिराक में समाज के कुछ ऐसे दमित वासना से लिप्त प्राणी होते हैं जो छोटे-छोटे बच्चों को बहला फुसलाकर अपनी दमित वासना को शांत करते हैं और बच्चों के जीवन को बर्बाद कर देते है। संसार में अनेक ऐसी संस्था और एजेंसियां काम कर रही है जो बच्चों को यौन शोषण से बचने के लिए प्रयासरत है। 'गीतांजलि श्री' का उपन्यास 'रेत-समाधि' ने भी विश्व स्तर पर इसकी और कदम बढ़ाया है जो हमें उनके उपन्यास में देखने को मिलता है, क्योंकि संसार के प्रत्येक घर में यह समस्या हो रही है जो बहुत ही दयनीय है। अभी हाल ही में विश्व स्तर पर छाए उपन्यास 'रेत-समाधि' की पंक्तियां स्पष्ट करती है कि किस प्रकार से व्यक्ति यौन अवसर का लाभ उठाकर छोटे-छोटे बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं और उनके आम लोगों के साथ खिलवाड़ करते हैं। जैसा की निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाया गया है-

''आओ, उसने बुलाया हो। मूंगफली दी हो या सिगरेट मंगवाई हो और बच्ची को कहा हो आओ और घर की तरफ मुड़ गया हो। बच्ची पल भर अपलक । फिर फाटक के नीचे से बिल्ली पिल्ले की तरह निकल अन्दर और अकेले के पीछे पीछे। अकेले मुड़ा। बच्ची रुक गयी। अकेले बढ़ा। बच्ची चलने लगी। ताकत ! अन्दर आदमी ने कुछ खाने को दे दिया। एक दिन बच्चा कि बच्ची खुद गेट खोलके आ गयी। एक दिन पेड़ के नीचे पड़ी कुर्सी पर बैठ के खाने लगी। एक दिन दरवाजे के बाहर बरामदे में सोती मिली। कोई पूछने ढूँढ़ने वाले नहीं उसको । वाह साहेब, इन बच्चों के न कोई आगे न कोई पीछे। ऐ !

निष्कर्ष: वस्तुत: कहा जा सकता है कि समाज में अनेक विकृतियाँ फैली हुई है। समय-समय पर समाज में अनेक समाज सुधाकरों ने अपने समय में उन्हें दूर करने का प्रयास किया। 'गीतांजलि श्री' ने भी समाज में परम्पराओं एवं रूढ़िवादिताओं पर कडा़ व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए वर्तमान परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है।

सन्दर्भ - सूची

[1] हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य,डॉ. प्रेमनारायण दीक्षित, पृष्ठ सं0 59

[2] If you detect the ridicule and your kindness is chilled by it, you are stipping into the grasp of satire." George Meredith 'Idea of Comedy' पृष्ठ सं0 79

[3] कबीर, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ सं0 164

[4] A literary work improse or verse, often numerous in which wickedness or folly is consured and made ridiculours, Encyclopedia of America, Vol. 24, पृष्ठ सं0 313

[5] सदाचार का ताबीज,श्री हरिषंकर परसाई, पृष्ठ सं0 35

[6] 'गीतांजलि श्री' माई, पृष्ठ संख्या - 35

[7] 'गीतांजलि श्री' तिरोहित , पृष्ठ संख्या - 11

[8] गीतांजलि श्री', रेत-समाधि , पृष्ठ संख्या-239

[9] गीतांजलि श्री', रेत-समाधि , पृष्ठ संख्या-238

[10] गीतांजलि श्री', रेत-समाधि , पृष्ठ संख्या-222

[11] 'गीतांजलि श्री', हमारा शहर उस बरस , पृष्ठ संख्या-120

[12] 'गीतांजलि श्री', हमारा शहर उस बरस , पृष्ठ संख्या-17

[13] 'गीतांजलि श्री' 'तिरोहित' पृ.स-90-91

[14] 'गीतांजलि श्री' 'रेत समाधि' पृ.स-239